दर्पण में

डॉ. प्रेरणा दुबे
© डॉ. प्रेरणा दुबे, 2025. All rights reserved.

गाँव की सीमा पर खड़े पीपल के नीचे हवा बुझी-बुझी-सी चल रही थी—मानो शाम अपनी ही साँसों से थक गई हो। रिया जब वर्षों बाद अपने पुरखों की हवेली के फाटक तक पहुँची, तो लगा जैसे यह घर उसकी आहट को पहचान गया हो।

दीवारों का खुरदुरा स्पर्श, लकड़ी की सड़ी हुई गंध, और बरामदे में पड़े पुराने दीयों की जमी कालिख—सबने एक साथ फुसफुसाया—

"याद है?"

पर स्मृति भी अजीब होती है—कभी दर्पण की धार जैसी वाचिक, कभी धुएँ की पतली, फिसलती रेखा-सी। हवेली की दहलीज़ पार करते ही हर कदम किसी ठंडे, अनजान तार को छू जाता था। कोने में खड़े तीन तिमिर-बासी दर्पण—जैसे अपने ही विस्मरण से लिपटे हुए—फिर भी चुपचाप रिया को निहारते थे।

एक दर्पण में उसका बचपन—दो चोटी, हिचकती मुस्कान।
दूसरे में—उसकी माँ—वह चेहरा जिसे रिया ने कभी सचमुच देखा नहीं, पर जिसे भीतर की स्मृति ने जाने कैसे सँजो रखा था।
और तीसरे में—एक युवती। अपरिचित। फिर भी उसकी आँखें ऐसी थीं जैसे वे रिया को रिया से पहले जानती हों।

चबूतरे पर सुबह की धूप वैसी ही पसरी थी जैसी बरसों पहले—पीली, धीमी, राख-भीगी। यह वही जगह थी, जहाँ पुरखों की स्मृतियाँ दीयों, सुपारियों और मौन के बीच रखी जाती थीं—जैसे कोई अदृश्य, पीढ़ियों से चलता आता तीर्थ।

"क्या तुम रिया हो?"

पीछे से स्त्री-सुर उभरा—शांत, पर ऐसा कि रिया के भीतर किसी पुरानी गाँठ को एकदम से कस दे।

मीरा—ठोस आकृति, पर उपस्थिति हवा की तरह फिसलती हुई। न पाँवों की धूल, न परछाईं का अंश। रिया को अचानक लगा—क्या वह किसी बीते युग की गूँज है, जो अभी तक चुप नहीं हुई?

“तुम लौट आईं,” मीरा ने कहा—जैसे यह लौटना रिया का नहीं, बल्कि किसी स्त्री-वंश की अनकही परंपरा का हिस्सा हो।

रिया ने धीमे से सिर झुका लिया।
“मुझे नहीं पता कि मैं यहाँ क्यों आई हूँ।”

मीरा ने चबूतरे पर उगे छोटे जंगली फूल को छुआ—इतनी कोमलता से कि वह स्पर्श फूल से ज्यादा स्मृति को छूता हुआ लगा।

“बेटी, स्मृतियों के घर किसी को जाने नहीं देते। लौटना कभी किसी की इच्छा नहीं होता—बस किसी का याद कर लेना होता है।”

हवेली के भीतर गहरा सन्नाटा फैल गया।

“तुम्हें वे कमरे याद हैं,” मीरा ने दहलीज़ की ओर देखते हुए कहा, “जहाँ तुम्हारी माँ को अकेला छोड़ दिया गया था?”

रिया के भीतर कुछ निहायत पुराना और कठोर टूटकर गिरने लगा।

“माँ...?”
उसकी आवाज़ पत्ते की तरह काँपी।
“मैं... मैं उन्हें बस चीखते हुए याद करती हूँ।”

मीरा की आँखों में थकान और करुणा—दोनों एक साथ चमके।

“चीखें पागलपन की भाषा नहीं होतीं, रिया। वे अक्सर वह सच कहती हैं जिसे कोई सुनना नहीं चाहता।”

उस रात हवेली रिया को सोने नहीं देती।
दीवारें चरमरातीं, लकड़ी के पुराने पैनल साँस लेते प्रतीत होते, और दर्पण—अंधेरे में भी—अपने भीतर किसी अपूर्ण, अनदेखे जीवन की हलचल सँजोए प्रतीक्षा करते।

तभी स्मृति का एक तीखा टुकड़ा उसके भीतर चमका—
उसकी माँ... दर्पणों से डरती थीं।

वे कहती थीं—
"इनमें वे स्त्रियाँ रहती हैं जिन्हें पूरा जीने नहीं दिया गया।"

और पिता हँसकर कहते—
"तुम्हारी माँ की तबीयत ठीक नहीं।"

पर आज, इस टूटे घर की साँसों के बीच, रिया को लगा—
शायद माँ नहीं, पिता डरे हुए थे।
क्योंकि स्मृतियाँ—सच को छिपाना नहीं जानतीं।

***

रात के किसी अनजाने हिस्से में रिया अचानक चौंककर उठ बैठी—किसी हल्के, लगभग ममता-भरे स्पर्श से।
मीरा उसके पास बैठी थी—चेहरे पर वही भाव, जैसे बरसों पुराने पेड़ के तने पर समय खुद एक मुस्कान दर्ज कर देता है।

"क्या अब तुम सच सुनने को तैयार हो?"

रिया ने सिर हिलाया—उसके भीतर की स्मृतियाँ थकी नदी जैसी बहने लगीं।

"तुम्हारी माँ बीमार नहीं थीं," मीरा ने कहा।
"वे बस सुन पाती थीं—उन स्त्रियों की आवाज़ें जो इस घर में गुम हुईं। वे आवाज़ें जो दर्पणों में कैद हो गईं, क्योंकि दुनिया ने उन्हें कहीं और जगह नहीं दी।"

रिया के गले में कुछ अटकने लगा।
"और... आप?"

मीरा धीमे से उठी। दर्पण की ओर पीठ मोड़ ली—मानो सामना करना कठिन हो।

“मैं वह हूँ,” उसने कहा,
“जिसे इतिहास ने नाम नहीं दिया। जिसे दुनिया ने जीवित नहीं रहने दिया। तुम मुझे नानी कह सकती हो—पर मैं सिर्फ़ वही नहीं। मैं वह पुकार हूँ... जो हर उस स्त्री के भीतर जीवित रही जिसे कभी पूरा जीने नहीं दिया गया।”

तीसरे दर्पण में आकृति स्पष्ट होने लगी—
वही युवती। न मुस्कान। न आँसू। बस स्थिर, धैर्यवान आँखें—जैसे सदियों से रिया को देख रही हों।

मीरा बोली—
“इस घर में स्त्रियाँ मरती नहीं, रिया। उन्हें बस भुला दिया जाता है। और भुला दिया जाना... मृत्यु से कहीं अधिक भयानक होता है।”

रिया धीरे-धीरे दर्पण की ओर बढ़ी। पर जो प्रतिबिंब उभर रहा था—वह उसका नहीं था।

वह किसी और युग का था। किसी ऐसी स्त्री का, जो रिया के भीतर कहीं छिपी थी—पीढ़ियों के अंधेरों में साँस लेती, किसी नाम की प्रतीक्षा करती हुई।

रिया पीछे हटने ही वाली थी कि दर्पण की सतह पर हल्की-सी तरंग उठी—जैसे किसी ने भीतर से उसे छुआ हो।

आकृति की आँखें अचानक उसकी आँखों में टिक गईं—भेदती हुई, पहचानती हुई, स्वीकारती हुई।

और उसी क्षण, रिया को एक अजीब-सी अनुभूति हुई— कि हवेली उसे नहीं पहचान रही थी... वह किसी और को ढूँढ रही थी।

मीरा धीरे-धीरे पीछे हट गई—उसकी उपस्थिति हल्की होती, धुँधलाती चली गई।

“अब तुम समझ गई हो,” उसने फुसफुसाया। “हम दर्पणों से बाहर नहीं आते, रिया। हम दर्पणों में लौटते हैं।”

यह कहते ही वह हवा में उतनी ही शांतिपूर्वक विलीन हो गई, जितना कोई भूला हुआ नाम स्मृति में घुल जाता है।

दर्पण की युवती अब पूरी स्पष्ट थी—और उसके चेहरे पर...वही दो चोटी, वही उदासी की छाया—जो रिया के बचपन में थी।

बस एक फर्क था—दर्पण की युवती अब मुस्कुरा रही थी।हल्की, गहरी, लगभग स्वागत-सी मुस्कान।

रिया का हृदय धक से रह गया।क्या वह मीरा थी?उसकी माँ?किसी पुरानी पुरखिन?या वह स्वयं—

वह रूप जो उसके भीतर सदियों से जीवित था, पर दुनिया ने कभी जन्म लेने नहीं दिया?

हवा अचानक ठंडी हो गई।दर्पण की सतह पर उसके प्रतिबिंब ने धीरे से होंठ खोले—और बिना आवाज़ के कुछ कहा।

इतना धीमे, कि रिया सुन नहीं सकी।या शायद—वह शब्द उसी को कहे गए थे जो अभी आने वाली थी...कभी किसी और जन्म में,किसी और देह में।

उसने एक आखिरी बार दर्पण की ओर देखा—और यह विचार उसके अंदर एक नर्म, भयावह यक़ीन की तरह ठहर गया—शायद मीरा कोई और नहीं थी।शायद वह स्वयं रिया थी—उसी की एक ऐसी स्मृति,जिसे अभी भविष्य में घटना था।

हवेली के भीतर एक पुराना दरवाज़ा कहीं खुला—धीरे, खिंचते स्वर में—जैसे समय ने एक और स्त्री को अपने वृत्त में बुला लिया हो।

रिया पीछे हट गई।पर दर्पण में वह युवती अब भी उसे देखते हुए मुस्कुरा रही थी—मानो कह रही हो—

“तुम लौटने नहीं आई थीं, रिया...तुम यहाँ हमेशा से थीं।”